भारत मे पूंजीवाद का विकास

डॉ० सुनीता रानी
असिस्टेंट प्रोफेसर
स्याना डिग्री कॉलेज स्याना,
बु०शहर, उ०प्र०
Email:drsunitsrani0@gmail.com

सारांश

भारतीय पूंजीपतियों ने सूती वस्त्र तथा इस्पात उधोग के क्षेत्र में आपात प्रतिस्थापन प्रारम्भ किया धीरे बैकिंग जूट विदेशी व्यापार कोयला, चाय पूरे क्षेत्र अधिग्रहित किये। भारतीय वाणिज्य उधोग महांमण्डल FICCI वस्त्र का गठन हुआ। इसे जब ही पूंजीपति वर्ग के प्रतिनिधि वर्ग के रूप में मान्यता मिल गई। पूंजीपतियों को लगता था कि यदि शक्तियों ने सवैधानिक मंचो का पूर्ण बहिकार कर दिया तो सरकार ऐसी नीतियां आसानी से पारित कर लेगी जो भारत के आर्थिक विकास को गम्भीर नुकसान पहुॅचाएगी। कांग्रेस, पूंजीपतियों से अत्याधिक प्रभावित भी थी जों कि इसका प्रयोग अपने वर्गीय स्वार्थी के लिए करते थे। कांग्रेस पर पूॅजीपतियों का कोई प्रभाव नहीं था। कांग्रेस ने पूंजीपतियों को अपनी शर्तों पर काम करने के लिए विवश किया।

पूंजीपतियों और व्यापारी समर्थन और सहयोग दे या न दे आजादी के लिए जनान्दोलन अपने लक्ष्य तरफ बढता ही रहेगा। यदि इसमें उनका सहयोग प्राप्त हो जाए तो लक्ष्य जल्दी प्राप्त किया जा सकेगा ।

मुख्य शब्दः *भारत मे पूंजीवाद का विकास, वर्ग संगठन का उदय, साम्राज्यवाद विरोध का स्वरूप, पूंजीपतियो के इस प्रकार के रवैयों, कांग्रेस और पूंजीपति सम्बन्ध।*

प्रस्तावना

औपनिवेशिक काल में, विशेषतः 20वीं शताब्दी में भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास दूसरे औपनिवेशिक देशों से भिन्न था। 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ होने के तुरन्त बाद ही भारतीय अर्थव्यवस्था में तेजी से आपात प्रतिस्थापन की प्रक्रिया शुरू हो गई । दोनों विश्व युद्धों तथा 1930 के विश्व व्यापारी आर्थिक मन्दी दौरान भारत पर साम्राज्यवाद की पकड ढीली हुई। भारतीय उघोगों का तेजी से विकास हुआ जिससे विदेशी आयात वस्तुतएं एवं वस्तुओं द्वारा प्रतिस्थापित होने लगे। भारतीय पूंजीपति विदेशी पूंजीपतियों के छोटे भागीदारी के रूप में नही बल्कि स्वतन्त्र पूंजी के आधार पर आगे बढ़ रहे थे। इस प्रकार देशी उघोगों के विकास से विदेशी व्यापार की औपनिवेशिक व्यवस्था उल्टी हो रही थी, 1914 तक उपनिवेश तैयार माल

का आयात और कृषि सम्बन्धी कच्चे माल का निर्यात करते थे। लेकिन 1914 से 1945 के दौरान ये ढ़ाचा उलट गया। घरेलू उघोगों में विदेशी पूंजी और महत्व ही न था। इस अवधि में और भी कम होने लगा। भारतीय पूंजीपतियों का ये विकास तभी सम्भव हुआ जब उसने लगातार राजनीतिक और आर्थिक संघर्ष किया तथा ब्रिटेश साम्राज्यवाद द्वारा भोगे गए संकट का दो विश्व युद्धों और मन्दी के दौरान पूरा लाभ उठाया।

भारतीय पूंजीपितयों ने सूती वस्त्र तथा इस्पात उद्योग के क्षेत्र में आयात प्रतिस्थापन प्रारम्भ किया फिर धीरे–धीरे बैकिंग, जूट विदेशी व्यापार कोयला और चाय जैसै क्षेत्र अधिग्रहित किये और 1920 के दशक में उन्होने शक्कर, सीमेन्ट, कागज, रसायन, लोहा और इस्पात के क्षेत्र में भी निवेश प्रारम्भ किया। इस प्रकार स्वतन्त्रता के समय भारतीय बाजार के 72 प्रतिशत हिस्से पर भारतीय उद्योगों का अधिकार हो चुका था। वित्तीय क्षेत्र में भी भारतीय पूंजी ने व्यापक स्तर पर काम किया जिससे 1914 के 30 प्रतिशत की अपेक्षा 1947 में भारतीय बैंको का कुल जमा राशि में हिस्सा 80 प्रतिशत हो गया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि औपनिवेशिक शासन के दौरान भारतीय पूंजीपति वर्ग का काफी ठोस आर्थिक विकास हुआ और इनके विकास की प्रक्रिया अन्य औपनिवेशिक देशों की तुलना में भिन्न थी भारतीय पूंजीपति वर्ग का विकास साम्राज्यवाद से स्वतन्त्रा और उसके विरूद्ध हुआ था। इसलिए इन्होनें अपने वर्गीय हितों को सम्राज्यवाद से जोड़कर नही देखा। सन् 1914 से 1947 के दौरान भारतीय पूंजीवादी वर्ग के स्वतन्त्र एवं द्रुतगामी विकास की वजह से पूंजीपतियों में साम्राज्यवाद विरोधी दृष्टिकोण की दृढ़ता आयी। सबसे महत्वपूर्ण बात कि लोकप्रिय वामपन्थी आंदोलन से भयभीत होकर पूंजीपति वर्ग ने सम्राज्यवाद से सघर्ष या समाझौता नही किया पूंजीपतिवर्ग को ये नही सोचना था कि साम्राज्यवाद का विरोध करें या ना करें बल्कि ये सोचना था कि साम्राज्यवाद से विरोध का रास्ता ऐसा हो जिससे पूंजीवाद को ही खतरा न हो जाए । हालांकि विकास के प्रारंम्भ की स्तर पर भारतीय पूंजीपतियों के लिए ये सम्भव नहीं था कि वे औपनिवेशिक राज्य से खुला संघर्ष कर सकें इसलिए सन् 1905–1908 के स्वदेशी आन्दोलन से बाहर ही रहे, असहयोग आन्दोलन (1920–22) के समय यघपि बहुत से व्यवसायी आन्दोलन में शामिल हुए लेकिन पुरषोत्तम दास टन्डन जैसे कई बड़े पूंजीपतियों ने इस आन्दोलन का वास्तव में विरोध ही किया इसके बाद के काल में पूंजीपतियों की स्थिति में परिवर्तन आया और पूंजीपतियों के बड़े वर्ग ने स्वतन्त्रता संग्राम को अपना समर्थन दिया।

वर्ग संगठन का उदय

उस समय भारत में यूरोप हितकारों प्रतिनिधित्व काफी संगठित ढंग से हो रहा था अतः भारतीय पूंजीपति भी 1920 के प्रारम्भ से ही भारतीय व्यवसायियों व पूंजीपतियों का राष्ट्रीय स्तर पर एक ऐसा संगठन बनाने का प्रयास करने लगे जो औपनिवेशिक सत्ता के सामने अपनी मांगो को सफलतापूर्वक रख सके। सन् 1927 में भारतीय पूंजीपति सफल रहे और भारतीय वाणिज्य उघोग महामंडल FICCI का गठन हुआ। इसे जल्द ही पूंजीपति वर्ग के प्रतिनिधि

के रूप में मान्यता मिल गई। FICCI का लक्ष्य "व्यापार, वाणिज्य और उघोग का राष्ट्रीय अभिभावक" बनना था। इसने एक राष्ट्रवादी संगठन की तरह साम्राज्यवाद की तरह साम्राज्यवाद की उसकी संमग्रता में एक आर्थिक समीक्षा प्रस्तुत की और साम्राज्यवाद के शोषण को उजागर किया अब पूंजीपतिवर्ग के नेताओं ने राजनीति में प्रभावपूर्ण हस्तेक्षप की आवश्यकता को महसूस किया इस प्रकार पूंजीपतियों के राजनीति में सक्रिय होने का अर्थ भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन से जुड़ना था FICCI के नेताओं ने सन् 1928 में राष्ट्रावादी आन्दोलन के विकास में ही FICCI के विकास तथा राष्ट्रवादी आन्दोलन की शक्ति में ही FICCI की शक्ति को माना। इस प्रकार अब पुरूषोत्तमदास टंडन के व्यतिव में भी बदलाव आया जबकि इसके पहले असहयोग आन्दोलन का उन्होनें विरोध किया था। धीरे–धीरे भारतीय पूंजीपतियों ने अर्थव्यवस्था के हर क्षेत्र में साम्राज्यवादी नीतियों का विरोध करना शुरू कर दिया ।

साम्राज्यवाद विरोध का स्वरूप

संवैधानिक–मार्ग–पूंजीपति वर्ग संवैधानिक संघर्ष तथा बातचीत के रास्ते को पूरी तरह न छोड़ने का पक्षकार था ये किसी आन्दोलन या सविन्य अवज्ञा के पक्ष में नही थे। पूंजीपतियों का यह दृष्टिकोण शुरू से ही था कि ब्रिटिश सरकार से बातचीत का रास्ता हमेंशा खुला रखा जाए।

पूंजीपतियों के इस प्रकार के रवैयों के कई कारण थे

प्रथमः पूंजीपतियों का भय था कि व्यापक सविनय अवज्ञा यदि लम्बा खिचेंगा तो जनता में उग्र सुधारात्मक चेतना फैल जाएगी जो साम्राज्यवाद के साथ पूंजीवाद के लिए भी खतरा बन जाएगी। साम्राज्यवादी विरोधी आन्दोलन को पूंजीवादी–विरोधी आन्दोलन में परिवर्तित न होने देने के इरादे से उन्होने हमेशा राष्ट्रीय आन्दोलन को संवैधानिक विरोध के रास्ते पर लाने का प्रयास किया। चूंकि इन्हें अपने सामान्य दैनादिन व्यापार में शासन के न्यूनतम सहयोग की आवश्यकता पड़ती थी इसलिए भी ये औपनिवेशिक शासन का लम्बे समय तक और सर्वव्यापी विरोधी नहीं कर सकते थे।

द्वितीय : पूंजीपतियों को लगता था कि यदि राष्ट्रवादी शक्तियों ने संवैधानिक मंचो का पूर्ण बहिष्कार कर दिया तो सरकार ऐसी नीतियॉ आसानी से पारित करवा लेगी तो भारत के आर्थिक विकास को गम्भीर नुकसान पहुंचाएगी। इसलिए उसने औपनिवेशिक शासन द्वारा बनाए मंचो का समर्थन किया साथ ही हिस्सेदारी भी की । हालांकि कुछ मामलो में उन्होनें बिना शर्त भागीदारी का समर्थन नहीं किया । उन्होनें ये निर्णय लिया कि आधारभूत मामलों पर बिना कोई समझौता किए केवल अपनी शर्तों पर ही हिस्सा लेगें। eg 1934 में संयुक्त संसदीय समिति द्वारा प्रस्तुत संवैधानिक सुधारों के मसौदे को फिक्की ने प्रतिक्रियावादी कहकर अस्वीकृत कर दिया। पूंजीपतियों ने समान्यता राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रमुख संगठनों की सहभागिता या स्वकृति के बिना अंग्रेज सरकार से संवैधानिक या अर्थिक सवालों पर बातचीत करने से मना कर दिया। इसलिए कई प्रमुख पूंजीपतियों ने प्रथम गोलमेज कान्फ्रेस का बहिष्कार किया, लेकिन गांधीजी के साथ दूसरी कान्फ्रेंस में भाग लिया। पूंजीपतियों को अच्छी तरह मालूम हो गया था कि उनके हितों की सुरक्षा का आश्वासन उस समय तक नही मिल सकता जब तक उसके पीछे काग्रेंस

का समर्थन नही है। इस प्रकार पूंजीपतियों द्वारा संवैधानिक पद्धति और प्रणाली के पक्षधर होने के प्रमुख कारण थे।

वे दक्षिण पंथ को मजबूत करके वामपंथ को प्रभावहीन कर सकते थे

वे ब्रिटिश शासन को आश्वस्त कर सकते थे कि वे उनकी सत्ता के बनने में कोई बाधा नही डाल रहे हैं। पुरूषोत्तमदास ने सन् 1942 में घोषित किया कि "वाणिज्यिक समुदाय की तमाम भागों का न तो उद्देश्य ही है और न ही उनके लिए यह सम्भव है कि वे ब्रिटिश शासन का समाप्त कर सकें।''

हालांकि पूंजीपतियों ने कभी–कभी जनआन्दोलनों का समर्थन भी किया था उदहरणस्वरूप 1931 के सविनय अवज्ञा आन्दोलन का समर्थन। क्योंकि उन्हें ये अभाव था कि इन्हें जो भी प्राप्त हुआ है, वह गांधीजी की वजह से तथा आगे भी इच्छित वस्तुओं की प्राप्ति के लिए गांधीजी का सहयोग अवश्यक होगा। इसलिए इन्होंने 1931 के असहयोग आन्दोलन को कमजोर न होने देने का निर्णय लिया । इसके बावजूद इन्होंने जनआन्दोलन के वापस लिए जाने के लिए समझौते की कोशिश करते रहे तथा शासन व कांग्रेस के बीच मध्यस्थता के लिए अपनी सेवाएं प्रस्तुत करते थे। eg1931 के गाधी इर्विन समझौते के पहले की वार्ता हालांकि पूंजीपतियों ने हमेशा शान्ति या समझौते का ही प्रयास किया, लेकिन उन्होनें इसके लिए बुनियादी मांगो में कटौती नहीं की और कुल मिलाकर आन्दोलन को कमजोर नहीं होने दिया जबकि राष्ट्रीय आन्दोलन अपनी असंवैधानिकता के शिखर पर था।

निष्कर्ष

जनआन्दोलन के उग्रवादी हो जाने के भय से या दैनान्दिनी व्यापार में नुकासान होने के डर से पूंजीपति वर्ग ने औपनिवेशिक शासन के दमन का समर्थन नहीं किया, न तो आन्दोलन की निन्दा की, न ही खुद को उससे अलग किया क्योंकि संविधानवाद पूंजीपतिवर्ग का लक्ष्य नही था और ना ही थोड़ा–थोड़ा करके लक्ष्य की प्राप्ति के समर्थक थे। यदि ऐसा होता तो वे कांग्रेस के बजाए उदारवादियों का साथ देते क्योंकि कांग्रेस तो बार – बार सघंर्ष के गैरसंवैधानिकतरी के अपना रही थी। ये वर्ग संवैधानिक साझेदारी को महज लक्ष्य की ओर एक कदम मानता था। जबकि लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अन्य कदम भी जरूरी हो सकते थे।

हालांकि इस मुद्दे पर शुरू में पूंजीपतिवर्ग का रूख कुछ और था पर समय के साथ इसमे परिवर्तन आया। स्वदेशी आन्दोलन के दौरान यह वर्ग इसका कट्टर विरोधी था। सन्1921 में असहयोग आन्दोलन का भी पूंजीपति वर्ग के एक तबके ने विरोध किया । पुरूषोत्तमदास तथा अन्य पूंजीपतियों ने अपने को असहयोग आन्दोलन का दुश्मन घोषित किया था। लेकिन चौथे दशक में छिड़े सविनय अवज्ञा आन्दोलन का अधिसंख्यक पूंजीपतियों ने समर्थन किया ।

भारत छोड़ो आन्दोलन शुरू होने के चार दिन पहले 5Aug.1942 को पुरूषोत्तमदास, J.R.D. Tata और घनश्यामदास बिड़ना ने वाय सराय को लिखा, वर्तमान संकट से उबरने और एक नए सविनय अवज्ञा आन्दोलन से बचने का एक मात्र तरीका यह खोजा कि भारत को राजनीतिक स्वाधीनता प्रदान की जाए।

कांग्रेस और पूंजीपति सम्बन्ध

कांग्रेस और पूंजीति के सम्बन्ध को दो दृष्टिकोण से विश्लेषित किया जा सकता है पहला ये कि कांग्रेस पूंजीपतियों से अत्याधिक प्रभावित थी जो कि इसका प्रयोग अपने वर्गीय स्वार्थों के लिए करते थे तथा दूसरा ये कि कांग्रेस पर पूंजीपतियों का कोई प्रभाव नहीं था। बल्कि कांग्रेस ने पूंजीपतियों को अपनी शर्त पर काम करने के लिए विवश किया।

प्रथम दृष्टिकोण इस विचार पर आधारित है कि पूंजीपतियों ने अपने कोष के प्रयोग से कांग्रेस को कुछ भागों पर लड़ने के लिए विवश किया जैसे रूपए–स्टर्लिग के अनुपात में कमी, भारतीय उघोगों के शुल्क संरक्षण और तटवर्ती परिवहन का भारतीय जहाज रानी के लिए आरक्षण। इसके अलावा कांग्रेस के कुछ राजनीतिक चुनाव में कांग्रेस प्रत्याशियों का चयन, 1930 के दशक के अन्त में श्रमिक आन्दोलन का दमन आदि भी पूंजीपति वर्ग से प्रभावित रहे । चूंकि इन्हे गांधीजी पर पूरा भारोसा था। इसलिए वे गांधाजी को समर्थन देते थे और गांधीजी भी पूंजीपतियों के समर्थक थे। इसप्रकार कहा जा सकता है कांग्रेस अपने प्रकृति में एक पूंजीवादी संगठन था।

परन्तु दूसरे दृष्टिकोण के अनुसार साम्राज्यवाद के विरूद्ध वित्तीय और मौद्रिक स्वायत्तता तथा संरक्षण इत्यादि मांगे स्वतन्त्र आर्थिक विकास के लिए आवश्यक मांगे थी और किसी भी साम्राज्य विरोधी संघर्ष में इन भागों का शामिल होना आवश्यक था। इसमें पूंजीपतियों के साथ साम्यवादी और समाजवादी भी शामिल हुए थे। दूसरी बात आर्थिक राष्ट्रवाद का सिद्धान्त भारत में प्रारम्भिक राष्ट्रवादियों ने बनाया था जबकि उस समय पूंजीपति वर्ग के अस्तित्व लगभग था ही नही और जहां तक नीतिनिर्धाण का मामला है आर्थिक सहायता के लिए कांग्रेस पूंजीपतियों पर इस हद तक निर्भर नहीं थी कि उनका निर्णय प्रभावी होता। कांग्रेसियों की भारी संख्या आर्थिक मामलों में आत्मनिर्भर थी और संघर्ष का सामान्य खर्च आम आदमी के सहयोग और स्वैच्छिक योगदान, सहायता शुल्क तथा छोटे चन्दों से चलता था। क्योंकि गांधीजी अंध–विश्वास और कांग्रेसी मन्त्रियों के जर्बदस्त असर के कारण कांग्रेस के स्थानीय संगठन जनता के स्थानीय संगठन जनता से इतना समर्थन हासिल कर सकते थे कि वे अधिक पैसा खर्च किए बिना चुनाव लड़ सकते थे।

इसका मतलब ये नही कि कांग्रेस ने अपने संवैधानिक चरणों में पूंजीपतियों के सहयोग को स्वीकार नहीं किया, फिर भी इस धन के सहारे पूंजीपतिवर्ग कांग्रेस को अपने इशारों पर नही चला सकता था।

गांधीजी मिल मालिकों और व्यापारियों के सहयोग का स्वागत करते थे तथा सन् 1922 में तो, उन्होनें स्वतन्त्रता जल्द से जल्द प्राप्त करने के लिए पूंजीपतियों को सहयोग करने के लिए प्रेरित भी किया था। परन्तु साथ हीं उन्हें ये भी बताया कि–

पूंजीपति और व्यापारी समर्थन और सहयोग दे या ना दे आजादी के लिये जनान्दोलन अपने लक्ष्य की तरफ बढ़ता ही रहेगा, यदि इसमें उनका सहयोग प्राप्त हो जाए तो लक्ष्य जल्दी प्राप्त किया जा सकेगा।

इसप्रकार निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि पूंजीपति कांग्रेस का सहयोग करें या न करें कांग्रेस दूसरे वर्गों के सहयोग से अपने कार्य कर सकती थी, परन्तु बहुत से मौकों पर इन्होनें पूंजीपतियों से वित्तीय सहयोग प्राप्त किया था। यथा डालमिया ने सन् 1937 के चुनाव कोष में पर्याप्त योगदान किया और बिड़ला ने रचनात्मक कार्य में हमेशा वित्तीय सहयोग दिया। यहॉ यह भी उल्लेखनीय है कि पूंजीपति वर्ग ने कभी भी कांग्रेस को अपने वर्ग की पार्टी नहीं समझा, वे कांग्रेस को जनान्दोलन की रहनुमाई करने वाला एक खुला संगठन मानते थे। भारतीय व्यापार मंडल के सचिव जे.के.मेहता ने इस बारे में कहा था कि कांग्रेस एक ऐसा संगठन है जिसमें किसी भी राजनीति –आर्थिक विचारधारा वाले व्यक्ति को स्थान मिल सकता है अतः इसे दक्षिण या वाम किसी भी दशा में मोड़ा जा सकता है।

वामपंथियों के प्रति पूंजीपतियों की निजी

चौथे दशक में कांग्रेस के भीतर नये सोशलिस्टों तथा कम्यनिस्टों के नेतृत्व में वामपन्थ का प्रभाव बढ़ने लगा जो पूंजीपतिवर्ग के लिए चिन्ता का विषय था। लेकिन इस विषय परिस्थिति में अन्य औपनिवेशिक देशों की तरह पूंजीपतिवर्ग ने साम्राज्यवाद का हाथ नहीं थामा। बल्कि वामपंथ के प्रभाव को कम करने के लिए बहुमुखी रणनीति अपनाई। यथा सन् 1929 में कुछ पूंजीपतियों ने कम्यूनिस्टो के विरूद्ध भारतीय व यूरोपीय पूंजीपतियों की एक पार्टी बनाने की कोशिश की तो अधिसंख्य पूंजीपतियों ने यह कहकर इसका विरोध किया कि साम्राज्यवाद समर्थक यूरोपीय आर्थिक हितों से सांठ–गांठ करके पूंजीपतिवर्ग का भला इसी में है कि वे संवैधानिक तरीकों से आजादी के लिए संघर्ष करने वालों का हाथ मजबूत करें। इसीतरह पूंजपितियों ने कम्यूनिस्टों के दमन के 'पब्लिक सेफटी बिल–1928' का भी विरोध किया था।

समय के साथ भारतीय पूंजीपतियों को ये महसूस हुआ कि बड़े पैमाने पर सामाजिक–आर्थिक उथल–पुथल को रोकने के लिए निरन्तर सुधार कार्यक्रम लाने चाहिए, इसी उद्देश्य से इन्होनें सन् 1942 में आर्थिक विकास समिति का गठन किया जिसने मशहूर "बाम्बे प्लान" तैयार किया इसका उद्देश्य समाजवाद की उन मांगों को स्वीकार करना था जो पूंजीवाद के अस्तित्व के लिए खतरा न हो। बाम्बे प्लान में त्वरित आर्थिक प्रगति और न्यायपूर्ण वितरण के सवाल को काफी गम्भीरता से लिया गया था इस बात का संकेत भी दे दिया था कि कोई राष्ट्रीय सरकार ही इन योजनाओं को वास्तविक रूप दे सकती थी।

सन्दर्भ ग्रंथ

1.डा0आर0के0पाण्डे–अर्थशास्त्र शिक्षा पुस्तक मन्दिर पृ **161** –सन्–1978

2.सुशमा गर्ग–अग्रवाल पब्लिकेशन्स–सन्–2013–2014

3.डा०पुखराज जैन –एस0वी0पी0डी0पब्लिकेशन्स हाउस–सन्–2017

4.डा०जे०जी०पन्त– साहित्य पब्लिकेशन्स–सन्–2010

5.विनय सिंह –अग्रवाल पब्लिकेशन्स–सन्– 1990